ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 307-309

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

ग्रामीण सत्ता संरचना के आधारों में परिवर्तन

रमेश कुमार
शोध अध्येता – समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार), भारत

Received- 19.07.2020, Revised- 21.07.2020, Accepted - 23.07.2020 E-mail: dr.ramnyadav@gmail.com

सारांश : *ग्रामीण शक्ति–संरचना– देश तथा काल की परिस्थितियों के अनुसार ग्रामीण शक्ति–संरचना परिवर्तनशील रही है। पूर्व स्वतंत्रता–काल में ग्रामीण शक्ति–संरचना का जो स्वरूप था वह स्वतंत्रयोत्तर काल में जनतांत्रिक विकेन्द्रीकरण प्रक्रिया के कारण अविकल परिवर्तित हो रहा है। अतएव ग्रामीण शक्ति–संरचना के बदलते हुए स्वरूप को दो रूपों : परम्परागत तथा आधुनिक प्रतिमानों के आधार पर समझा जा सकता है।*

कुंजीभूत शब्द– ग्रामीण शक्ति–संरचना, परिस्थितियों, ग्रामीण, शक्ति–संरचना, परिवर्तनशील, स्वतंत्रता ।

परम्परागत प्रतिमान– परम्परागत ग्रामीण शक्ति–संरचना के अन्तर्गत तीन आधारों को महत्वपूर्ण माना गया है : जमींदारी प्रथा, गाँव–पंचायत तथा जाति–पंचायत।

जमींदारी प्रथा एवं ग्रामीण शक्ति–संरचना में अन्तर्सम्बन्धों की व्यवस्था मुख्यतः सम्पत्ति एवं भूमि–अधिकार पर निर्भर थी। गाँव के आर्थिक संसाधनों का बड़ा स्वामी होने के कारण जमींदार शक्ति–सम्पन्न होता था जिसकी सत्ता प्रायः पैतृक तथा स्थानीय होती थी। फलतः, भूस्वामित्व के विशेष स्वरूप ने परम्परागत शक्ति–संरचना को एक विशेष स्वरूप प्रदान किया जिसमें शक्ति का केन्द्रीयकरण देखने को मिलता है। शक्ति–संरचना के इस स्वरूप में जमींदारों तथा ग्रामीणों के सम्बन्ध क्रमशः प्रभुत्व एवं आधीनता के थे। सम्पूर्ण शक्ति–संरचना एक पक्षीय तथा असंतुलित थी।

गाँव में शक्ति–संरचना का दूसरा आधार गाँव–पंचायतों में निहित था। यद्यपि सम्पूर्ण भारत में गाँव पंचायतों का संगठन समान प्रकृति का नहीं था, इसके बावजूद पंचायतें ही इस तथ्य का निर्धारण करती थीं कि गाँव में विभिन्न व्यक्तियों के अधिकार क्या होंगे। गाँव पंचायत के अधिकार ही ग्रामीण शक्ति–संरचना के वास्तविक आधार थे। यह संगठन गाँव में कानून और व्यवस्था स्थापित करने के साथ–साथ ग्रामीणों को न्याय भी सुलभ कराता था। सैद्धान्तिक स्तर पर ग्रामीण शक्ति–संरचना में पंचायतों का स्थान सर्वोपरि था परन्तु व्यावहारिक पटल पर पंचायत की शक्ति प्रायः भू–स्वामियों में ही निहित थी।

ग्रामीण शक्ति–संरचना का एक अन्य आधर जाति–पंचायतें थीं। जाति पंचायत एक जाति विशेष की वह शक्तिशाली इकाई थी जो एक विशेष क्षेत्र में अपनी जाति के सदस्यों के व्यवहारों का निर्धारण करती थी तथा जातीय नियमों का उल्लंघन करने वालों को दण्डित भी करती थी। इस प्रकार, जाति–पंचायत में विधायिका तथा न्यायपालिका दोनों ही प्रकार के अधिकार निहित थे। इनका उद्देश्य अपनी जाति के सदस्यों को अनुशासित करना था। परम्परागत जाति पंचायत में एक मुखिया तथा कुछ सदस्य होते थे जिनमें सम्पूर्ण अधिकार निहित थे परन्तु जाति–पंचायतें भी जमींदार के प्रभाव से पृथक नहीं थीं। संक्षेप में, ग्रामीण शक्ति–संरचना के परम्परागत स्वरूप में सम्बन्धित प्रमुख विशेषतायें इस प्रकार थीं :

1. ग्रामीण शक्ति–संरचना जिन व्यक्तियों अथवा समूहों से सम्बद्ध थी, उनकी शक्ति का स्वरूप प्रायः पैतृक था ;
2. शक्ति–संरचना में उच्च जातियों का वर्चस्व था ;
3. भू–स्वामित्व की शक्ति–निर्धारण में अहम् भूमिका थी ;
4. निरंकुशता, शक्ति–संरचना की एक प्रमुख विशेषता थी।
5. ग्रामीण शक्ति संरचना में "सत्ता" का तत्व "प्रभाव" की अपेक्षा अधिक सक्रिय था।

आधुनिक प्रतिमान– भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ग्रामीण शक्ति–संरचना तथा नेतृत्व के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले आधारों में व्यापक परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं। स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान यह अनुभव किया गया कि शक्ति–संरचना के परम्परागत आधार गाँवों में सामाजिक तथा आर्थिक सम्बन्धों को रूढ़िवादी तथा शोषण आधारित बनाने के लिए उत्तरदायी हैं। फलतः स्वतंत्रता–प्राप्त होते ही नयी सरकार ने इन आधारों में परिवर्तन हेतु प्रयास किये। प्रथमतः, जनतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की दिशा में प्रयास हुआ और गाँवों में पंचायतों का पुनर्गठन किया गया। तत्पश्चात्, जमींदारी प्रथा का उन्मूलन करके, मध्यस्थों को समाप्त करते हुए, कृषकों को सीधे राज्य के अधिकार में ला दिया गया। उत्तर प्रदेश में, ये दोनों ही कार्य क्रमशः उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1948

अनुरूपी लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

तथा उ०प्र० जमींदारी उन्मूलन अधिनियम, 1951 के माध्यम से किये गये।

ग्राम–पंचायतों के माध्यम से प्रथम बार गाँवों में शक्ति–संरचना के व्यवस्थित आधार का सूत्रापात हुआ। वयस्क मताधिकार, ग्रामीण व्यवस्था में स्त्रियों की सहभागिता, ग्राम पंचायत की कार्यवाही को लिखित स्वरूप प्रदान करना तथा पंचायतों की राज्य की प्रशासनिक तथा न्यायिक व्यवस्थाओं से सम्बद्धता ऐसे महत्वपूर्ण कदम थे जिन्होंने ग्रामीण जीवन को नई दिशा दी। राजनीतिक सत्ता के हस्तान्तरण के साथ ही आर्थिक और सामाजिक सत्ता का भी हस्तान्तरण हुआ। आर्थिक सत्ता को सहकारिता के माध्यम से परिवर्तित करने का प्रयास किया गया। इस प्रकार गाँवों में शक्ति–संरचना के परम्परागत आधारों में परिवर्तन वैधानिक रूप से गठित विकासोन्मुखी इकाईयों के माध्यम से लाया गया।

1951 में जमींदारी व्यवस्था उन्मूलन अधिनियम ने ग्रामीण लोकतंत्रीकरण के मार्ग के अवरोधों को दूर करने में अहम् भूमिका निभाई। भूमि–सुधार कार्यक्रमों के अन्तर्गत, मध्यस्थों का उन्मूलन कर, कृषकों को सीधे राज्य से सम्बद्ध कर दिया गया जिससे उन्हें जमींदारों, लम्बरदारों तथा मुखिया के शोषण से मुक्ति मिली। गाँव की सार्वजनिक सम्पत्ति तालाब, चारागाह, परती भूमि आदि, जो पहले जमींदार के अधिकार में थी, गाँव की सामूहिक सम्पत्ति घोषित कर दी गयी तथा उसे ग्राम पंचायत के अधिकार–क्षेत्र में ला दिया गया। इस प्रकार, गाँवों में आधीनता तथा आधिपत्य पर आधारित समाज–व्यवस्था के स्थान पर समतावादी समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ जिससे शक्ति–संरचना के नवीन प्रतिमानों के प्रादुर्भाव की सम्भावनायें प्रबल हुई।

गाँवों में अनुशासन की स्थापना के लिए प्रसिद्ध जातीय पंचायतों का अस्तित्व भी समाप्तप्राय है क्योंकि इनमें निहित प्रशासनिक, न्यायिक एवं दण्डाधिकार गाँव पंचायतों तथा शासन द्वारा स्थापित न्यायालयों को हस्तान्तरित हो गये। जातीय व्यवस्थाओं पर कुठाराघात करने वाली नयी संवैधानिक स्थितियों ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

उपर्युक्त प्रयासों के अतिरिक्त, भारतीय संविधान की व्यवस्थाओं के अनुरूप स्थापित कल्याण–राज्य ने गाँवों की शोषित और उत्पीड़ित जनता के उत्थान हेतु कल्याणकारी योजनाओं का सूत्रापात किया जिनमें 2 अक्टूबर, 1952 को प्रारम्भ किये गये सामुदायिक विकास कार्यक्रम का अपना विशेष महत्व है। भारत सरकार ने बलवन्तराय मेहता कमेटी (1957) की अनुशंसाओं को स्वीकार कर सामुदायिक विकास कार्यक्रम को जनता का कार्यक्रम बनाने हेतु उसका लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण कर दिया। फलतः इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व ग्राम स्तर पर ग्राम–पंचायतों, विकास खण्ड स्तर पर क्षेत्र समितियों तथा जिला स्तर पर जिला परिषदों को दे दिया गया। उक्त संगठनों का दायित्व जन प्रतिनिधियों के हाथ में होने के कारण जहाँ एक ओर इन कार्यक्रमों द्वारा विकास के लक्ष्य को प्राप्त करना आसान हुआ वहीं दूसरी ओर ग्रामीण समुदाय में नेतृत्व को नया स्वरूप प्रदान करने में इनकी भूमिका सकारात्मक हो गई। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्राम व विकास खण्ड स्तर पर कुशल और उत्साही व्यक्तियों को अपने समूह को नेतृत्व देने का अवसर प्राप्त हुआ। उक्त परिस्थितियों ने ऐसे नेतृत्व के लिए मार्ग प्रशस्त किया जो व्यक्ति के स्वार्जित गुणों पर अधिक निर्भर हो सके। संविधान का 73वां संशोधन, जो 24 अप्रैल, 1993 से प्रभावी है, पंचायती राज से ही सम्बन्धित हैं इस संशोधन के द्वारा स्थानीय प्रशासन में सहभागिता हेतु अनुसूचित जातियों, जनजातियों, पिछड़ी जातियों व महिलाओं के स्थान आरक्षित किये गये हैं। फलतः अब ग्रामीण शक्ति–संरचना तथा नेतृत्व में परिवर्तन का एक नया अध्याय जुड़ने की सम्भावना पाई जाती है।

संक्षेप में, ग्राम–पंचायतों के पुनर्गठन, जमींदारी व्यवस्था के उन्मूलन तथा सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को बल मिला जिससे परम्परागत ग्रामीण शक्ति–संरचना तथा नेतृत्व में मौलिक परिवर्तनों का सूत्रपात हुआ। परिवर्तित परिस्थितियों में नेतृत्व के नये प्रतिमान उभरकर सामने आये हैं। नेतृत्व की दृष्टि से ग्रामीण जीवन में शक्ति के दो ही स्रोत प्रमुख रहे हैं : जन्म और कर्म काण्ड आधारित श्रेष्ठता तथा समूह विशेष का संख्या–बल। वर्तमान में, जन्मगत श्रेष्ठता की अपेक्षा संख्या–बल का महत्व शक्ति–संरचना में तीव्र गति से बढ़ा है। परिणामस्वरूप, गाँवों में नेतृत्व का परम्परागत स्वरूप शिथिल पड़ने लगा है किन्तु उच्च जातियों के प्रभाव को भी नकारा नहीं जा सकता, चाहे वह परोक्ष रूप में ही क्यों न हो। अनेक अध्ययन यह भी स्पष्ट करते हैं कि नवीन ग्रामीण शक्ति–संरचना में राजनीतिक दलों की भूमिका भी प्रभावी होती जा रही है। राजनीतिक दल गाँव की जाति–संरचना की दृष्टि से अपनी राजनीतिक गतिविधियों के समीकरण तैयार करते हैं जिसमें संख्या–बल के आधार पर जातिविशेष को शक्ति–संरचना में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो जाता है।

भारत में संविधान के अन्तर्गत जिस नवीन लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष एवं समता–आधारित शक्ति–संरचना

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-I, Issues-16, YEAR- June -2020

को विकसित करने का प्रयास किया गया, उसमें आंशिक सफलता तो मिली किन्तु शक्ति–संरचना को प्रभावित करने वाले परम्परागत कारकों का अस्तित्व पूर्ववत न सही, सूक्ष्मांश महत्व का अवश्य बना रहा। उल्लेखनीय है कि परम्परा का अन्त बहुत कठिन होता है। ग्रामीण शक्ति–संरचना के सम्बन्ध में भी वास्तविकता यह है कि उसमें कुछ बाह्य परिवर्तन तो हुए हैं परन्तु उसका आन्तरिक स्वरूप आज भी परम्परा के अधिक निकट है। यदि पहले उच्च जातियों का वर्चस्व जातीय श्रेष्ठता के आधार पर बना हुआ था तो अब वे चुनावों के माध्यम से अपना प्रभाव बताने में सफल हो रहे हैं। अशोक मेहता समिति ने पाया कि पंचायती राज संस्थाओं में सामाजिक व आर्थिक रूप से सुदृढ़ वर्गों का वर्चस्व बना हुआ। समिति ने यह भी पाया कि भ्रष्टाचार, अक्षमता, राजनीतिक हस्तक्षेप, शक्ति का केन्द्रीकरण आदि के कारण औसत ग्रामीण को पंचायती राज संस्थाओं का लाभ नहीं मिला है।

भारतीय गाँवों में आज भी सम्पूर्ण राजनीति तथा उसका ध्रुवीकरण जाति–आधारित विभिन्न गुटों पर केन्द्रित है। विभिन्न जातियाँ अपने संख्या–बल के आधार पर साझा तथा जोड़–तोड़ की राजनीति के द्वारा शक्ति संरचना में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने में लगी है। उक्त परिस्थितियों में ग्रामीण शक्ति–संरचना के अन्तर्गत एक ऐसे प्रच्छन्न नेतृत्व का विकास हुआ है जो कभी किसी एक वर्ग की शक्ति को बढ़ा देता है तो कभी दूसरे वर्ग की। फलतः ग्रामीण शक्ति–संरचना में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह परिलक्षित हुआ है कि पहले वह जितनी स्थिर थी आज वह उतनी ही अस्थिर हो गई है।

ग्रामीण शक्ति–संरचना में विकसित नवीन प्रतिमानों में आज भी परम्परागत विशेषताओं का समावेश है। इस सन्दर्भ में, अनेक विद्वानों के अध्ययनों से महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं।

योगेन्द्र सिंह ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के 6 गाँवों का अध्ययन किया। उनके अनुसार, गाँवों की शक्ति–संरचना में विद्यमान वर्तमान विशेषताओं को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

1. गाँवों में आज भी शक्ति उच्च जातियों एवं वर्गों में केन्द्रित है।

2. निम्न जातियाँ एवं वर्ग संगठित होकर उच्च जातियों एवं वर्गों से शक्ति प्राप्त करने हेतु प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं। इस प्रवृत्ति ने गुटवाद को जन्म दिया है। फलतः ग्रामीण समुदाय में विघटन, सामाजिक तनाव तथा असुरक्षा की भवना उत्पन्न हो गयी है।

3. नवीन ग्रामीण शक्ति–व्यवस्था में जिन धर्म निरपेक्ष एवलोकतांत्रिक मूल्यों की अपेक्षा की गई थी, वे गाँवों की मूल्य व्यवस्था एवं शक्ति–संरचना में अधिक प्रभावपूर्ण नहीं बन सके।

4. ग्रामीण शक्ति–संरचना आज भी विभिन्न जातियों एवं वर्गों की आर्थिक सम्पन्नता एवं विपन्नता के प्रतिमानों से प्रभावित है। गाँवों में शक्ति–व्यवस्था का झुकाव उन समूहों की ओर है जो ग्रामीण लोगों की आर्थिक आकांक्षाओं को नियंत्रित करते हैं। इस प्रकार, भविष्य में ग्रामीण शक्ति–व्यवस्था की गति–शीलता की दिशा गाँवों में होने वाले आर्थिक परिवर्तनों के स्वरूप पर निर्भर करेगी।

आन्द्रे बेंते ने अपने दक्षिण भारत के ग्राम अध्ययन के आधार पर कुछ भिन्न निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं। उनके अनुसार, परम्परागत शक्ति–संरचना भू–स्वामित्व एवं उच्च अनुष्ठानिक प्रस्थिति पर निर्भर थी। फलतः गाँव में उन ब्राह्मणों को शक्ति–संरचना में सर्वोच्च स्थान मिला हुआ था जो अधिक भूमि के स्वामी थे तथा धार्मिक प्रतिष्ठा के कारण जिन्हें धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक अधिकार मिले हुए थे। किन्तु वर्तमान में परिवर्तन की नई शक्तियों ने गाँव की परम्परागत शक्ति–संरचना को बदल दिया है। अपने संख्या–बल के कारण अब गैर ब्राह्मण जातियों ने ब्राह्मणों के हाथों से पंचायत का नियंत्रण छीन लिया है। परम्परात्मक शक्ति–संरचना में प्रदत्त कारकों का महत्व अधिक था किन्तु वर्तमान में अर्जित एवं व्यक्तिगत गुणों का महत्व बढ़ा है। जनतंत्रीय व्यवस्था ने संख्यात्मक शक्ति का महत्व बढ़ा दिया है। फिर भी, संख्या–शक्ति एकमात्र आधार नहीं है। जो समूह आकार में बड़े होने के साथ ही सामाजिक तथा आर्थिक प्रतिष्ठा भी अर्जित कर लेते हैं, उन्हें ग्रामीण शक्ति–संरचना में उच्च स्थान प्राप्त हो जाता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. योगेन्द्र सिंह : दि चेंजिंग पावर स्ट्रक्चर ऑफ विलेज कम्युनिटी एक केस स्टडी ऑफ सिक्स विलेजेज इन इस्टन यू०पी० इन रूरल सोशियोलॉजी इन इंडिया (सम्पादित), ए० आर० देसाई, पृष्ठ 711–723.
2. ओ०पी० शर्मा : रूरल इलीट्स एण्ड पावर पॉलिटिक्स ऑफ पंचायती राज इन कान्सेप्ट्स ऑफ इंडियन सोसायटी (सम्पादित) आर० प्रसाद, जी० आर०, हेलन तथा के० पाठक, सतीश बुक इन्टरप्राइजेज, आगरा, पृष्ठ– 185–198.

*****